होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम ''होविशिका'' को एक ऐसे प्रयास के रूप में देखा जा सकता है जो शिक्षा की 'सरकारी समझ' का कोई विकल्प प्रस्तुत न करक सीधे मुख्यधाारा में हस्तक्षेप के लिए आधार तैयार करता है और तंत्रगत बदलाव का प्रयास करता है। यह प्रयास सफल होने के बावजूद सरकारी तंत्र की आधिकारिक हिंसा का शिकार होकर समाप्त हुआ लेकिन यह प्रयास अपनी सम्पूर्णता में एक मिसाल है; उन सभी के लिए जो इस दिशा में सक्रिय हैं। यह लेख होविशिका के बारे में उपलब्ध द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है इसलिए इससे 'एम्पीरिकल' शोध आधारित परिणामों या विश्लेषण की आशा नहीं रखी जानी चाहिए।

तंत्रगत गुणात्मक सुधार का वास्तविक प्रयास

❑ बीरेन्द्र सिंह रावत

होविशिका ने तीस वर्षों तक भारतीय शिक्षा की औपचारिक प्रणाली में अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज की। इसने शिक्षा जगत में भले ही किसी नये शिक्षणशास्त्रीय सिद्धांत या दृष्टिकोण का प्रतिपादन न किया हो, लेकिन इस कार्यक्रम के जरिये मानवीय ज्ञान के बेहतर पक्षों का लाभ उन इलाकों तक भी पहुंचा जिन इलाकों में ऐसे ज्ञान तक पहुंचने के ढांचागत प्रावधान नहीं है। होविशिका ने मध्यप्रदेश ही नहीं, देश के अन्य हिस्सों में भी शिक्षणशास्त्र को शिक्षायी बहस के केन्द्र में लाने की कोशिश की। होविशिका की विशेषता यह भी है कि इसने शिक्षणशास्त्र तथा पाठ्यक्रम को कक्षाओं में प्रचलित तरीकों की सीमा से बाहर निकालकर इनका संबंध नीतिगत प्रावधानों तथा नीति निर्माताओं की नीयत के साथ जोड़ा। इससे उस विचार में सेंध लगी है जिसके तहत शिक्षक को प्रत्येक असफलता के लिए जिम्मेदार माना जाता है।

होविशिका ने औपचारिक विद्यालय प्रणाली के समांतर प्रयोग न करके शिक्षा की औपचारिक धारा को मजबूत करने का प्रयास किया, जिससे इसकी प्राथमिकता का पता चलता है। इसका विश्वास था कि औपचारिक धारा में काम के जरिए ही नीतिगत निर्णयों को प्रभावित किया जा सकता है।

1. इतिहास

सन् 1972 में दो स्वयं सेवी संगठनों-फ्रेंडस रूरल सेंटर रसूलिया एवं किशोर भारती ने मध्य प्रदेश सरकार के सामने कक्षा 6 से 8 के स्तर पर विज्ञान विषय को वैज्ञानिक पद्धति से पढ़ाने का प्रस्ताव रखा और प्रयासों के बाद सहमति पाई। मित्र मंडल केन्द्र, रसूलिया, होशंगाबाद (म.प्र.) से मात्र एक किलोमीटर की दूरी पर है। सन् 1971 में इस केन्द्र का मार्गदर्शन विख्यात गांधीवादी शिक्षाविद् सुश्री मार्जरी साइक्स कर रही थीं। साइक्स का दृढ़ मत था कि शिक्षा के क्षेत्र में जो भी काम हो वह दिशा परिवर्तन का हो, न कि यथा-स्थिति को बनाए रखने का। साथ ही उनका विचार था कि काम सरकारी स्कूली तंत्र की मुख्यधारा को बदलने का होना चाहिए, न कि उसके समानांतर एक अलग स्कूली व्यवस्था खड़ी करने का।

साठ के दशक में दून स्कूल के भौतिकी के शिक्षक श्री भास्कर पित्रे के नेतृत्व में पांच-छह पब्लिक स्कूलों के शिक्षकों ने अपनी पहल पर भौतिकी अध्ययन के ऐसे प्रयोगों की शृंखला तैयार की जो छठी कक्षा में बच्चे स्वयं कर सकते थे। इस प्रयास में उन्होंने 'फिजिक्स थ्रू एक्सपेरिमेंटस'' नामक पुस्तक तैयार की। एक संभावना के अनुसार शिक्षकों का यह समूह शायद साठ के दशक में ही इंग्लैण्ड की नफील्ड फाउंडेशन द्वारा विज्ञान विषय के क्षेत्र में किए जा रहे कार्यों से प्रेरित रहा हो। अखिल भारतीय विज्ञान शिक्षक संघ के दबाव में इस समूह द्वारा तैयार पुस्तक को छपवाने के लिए एन.सी.ई.आर.टी. ने पांच हजार रुपये का अनुदान दिया। पुस्तक छपी लेकिन एन.सी.ई.आर.टी. के तहखाने में दब गई।

भौतिक अध्ययन दल अपने अनुभवों के व्यापक प्रसार के लिए प्रयास करता रहा। सन् 1969 में इस दल का संपर्क टाटा आधारभूत शोध संस्थान, मुंबई के कुछ वैज्ञानिकों से हुआ। इन वैज्ञानिकों ने निर्णय लिया कि वे भौतिक अध्ययन दल की प्रयोग पुस्तक और प्रयोगनिष्ठ शिक्षण-पद्धति को मुंबई महानगर निगम के मिडिल स्कूलों में लागू करवाने का काम उठाएंगे। इन वैज्ञानिकों के प्रयास स्वरूप मुंबई महानगर निगम के शिक्षा विभाग से चार बड़े मिडिल स्कूलों में काम करने की अनुमति मिल गई। शिक्षकों के साथ काम करने तथा शिक्षकों का सहयोग मिलने पर भी शिक्षक रूढ़िगत पद्धति की ओर लौटने की बात कहते, क्योंकि परीक्षाओं का स्वरूप नई शिक्षण-पद्धति के अनुरूप नहीं था। इस चिंता को ध्यान में रखते हुए संस्थान के शीर्षस्थ वैज्ञानिकों (प्रो. एम. जी. के. मेनन और प्रो. यशपाल) ने नगर निगम की शिक्षा संचालिका (डा.

माधुरी बेन शाह) से अपील की कि वे इस कार्यक्रम के शैक्षिक उद्देश्यों को मद्देनजर रखते हुए वार्षिक परीक्षा को बदलने की अनुमति दे दें। ऐसी अनुमति न मिलने के कारण यह प्रयास मात्र ढाई-तीन साल में अपने आप सिमट गया।

सन् 1971की गर्मियों में इस बात पर विचार किया गया कि मार्जरी बहन की समझ को ध्यान में रखते हुए भौतिक अध्ययन दल की शिक्षण पद्धति होशंगाबाद के सरकारी स्कूलों में लागू की जाये। इसके लिए पित्रे होशंगाबाद आए और प्रस्ताव की रूपरेखा जिला शिक्षा अधिकारी के सामने रखी। पित्रे ने इस काम को निम्नलिखित शर्तों पर समर्थन देना स्वीकार किया-

1. कम से कम 15 सरकारी स्कूलों में प्रयोग करने की अनुमति मिलनी चाहिए ताकि शुरू से ही इस काम को तंत्रगत हस्तक्षेप के रूप में उभारा जा सके।

2. राज्य शासन द्वारा स्वीकृत एन.सी.ई.आर.टी. की तर्ज पर तैयार पाठ्यपुस्तकों की जगह भौतिकी अध्ययन दल की शैली पर लिखी गई कार्य पुस्तकें उपयोग में लाई जायेंगी।

3. शिक्षकों का उन्मुखीकरण नये सिरे से करना होगा।

4. प्रत्येक स्कूल से कम से कम दो शिक्षक लिए जायेंगे ताकि वे एक दूसरे का साथ दें और कार्यक्रम के लिए एक समर्थन का माहौल बना सकें।

5. चयनित स्कूलों के जिन शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जायेगा उन्हें शासन अगले तीन वर्षों तक इन 15 स्कूलों में से अन्य स्कूलों में स्थानांतरित नहीं करेगा, ताकि प्रशिक्षण का पूरा लाभ मिल सके।

6. इन स्कूलों की विज्ञान विषय की वार्षिक परीक्षा (बोर्ड परीक्षा समेत) भी कार्यक्रम के उद्देश्य के अनुरूप ली जाएगी।

अभिजात्य तथा महानगर के स्कूलों में हुए अनुभवों को समेटते हुए विज्ञान को ग्रामीण परिवेश में ढालने की चुनौती स्वीकार की गई। इन विचारों के आधार पर रसूलिया के युवा संचालक सुदर्शन कपूर तथा किशोर भारती से डा. अनिल सद्गोपाल ने एक लिखित प्रस्ताव तैयार किया। फरवरी 1972 में यह प्रस्ताव संचालक लोक शिक्षण (मध्यप्रदेश) के समक्ष प्रस्तुत किया गया। काफी विचार विमर्श के बाद शासन ने 16 स्कूलों में काम करने की अनुमति दे दी। लोक शिक्षण संचालक ने कार्यक्रम प्रस्तावित करने वालों को सलाह दी-

- पहली, कार्यक्रम के लिए पैसा मत मांगना क्योंकि यह नीतिगत पहलू है।
- दूसरी, अभी पाठ्यक्रम बदलने की बात मत करना। मौजूदा पाठ्यक्रम को ही प्रयोगनिष्ठ पद्धति से पढ़ाने की बात करना।
- तीसरी, परीक्षा बदलने की बात मत करना क्योंकि यह भी नीतिगत पहलू है।

कार्यक्रम का केन्द्रीय उद्देश्य औपचारिक स्कूलों में विज्ञान को गतिविधि आधारित पद्धति द्वारा पढ़ाना तथा इसी के अनुरूप शिक्षा की मुख्यधारा में संरचनागत परिवर्तन करवाना था। इसकी मान्यता थी कि बच्चों को अपने हाथों से प्रयोग करके अपने अवलोकनों को दर्ज करके और अपने सहपाठियों एवं शिक्षकों के साथ चर्चा करके स्वतंत्र निष्कर्ष निकालते हुए विज्ञान सीखना चाहिए। ऐसा होने पर ज्ञान सृजन से जुड़ी ज्ञानमीमांसीय धारणाएं परिवर्तित होने लगती है। ज्ञान की सत्ता का दायरा शिक्षक से हटकर विस्तृत होने की दिशा–दशा पकड़ लेती है।

सन् 1972 से सन् 1979-80 में ही होविशिका का जिम्मा फ्रेंड्स रूरल सेंटर, रसूलिया एवं किशोर भारती का था। लेकिन मित्र मंडल, रसूलिया 1979-80 में ही होविशिका से अपना रिश्ता तोड़कर अलग हो गया। कार्यक्रम का नेतृत्व अकेले किशोर भारती पर आ जाने से हालात अधिक चुनौतीपूर्ण हो गये। ऐसी स्थिति में सन् 1982 में केन्द्रीय योजना आयोग एवं शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सहयोग से एकलव्य संस्था का निर्माण हुआ जिसने होविशिका की बागडोर संभाली। सन् 1984-85 में प्रदेश सरकार ने इस कार्यक्रम को अन्य 13 जिलों के एक-एक शाला संकुल (कक्षा 6 से 8) में लागू करने का निर्णय लिया। लगभग 30 सालों से चले आ रहे इस प्रयोगधर्मी कार्यक्रम को एकाएक 3 जुलाई, 2002 को राज्य सरकार ने बंद करवा दिया। इस प्रकार राज्य ने समाज की मुख्यधारा के अन्तर्गत चलने वाले बाल समर्थक कार्यक्रम को अपनी आधिकारिक हिंसा का शिकार बनाया।

राज्य ने कार्यक्रम बंद करवाने संबंधी अपने आदेश में मुख्यत: तीन तर्क दिए-

- नवाचारों को मापने का पैमाना बोर्ड परीक्षाएं होती हैं।
- कार्यक्रम और सरकार का रिश्ता किरायेदार और मकान मालिक का है।

- कानून के तहत जिला योजना समितियों के बन जाने से समाज को स्कूल की संरचना और उसकी पाठ्यचर्या बदलने का हक मिल गया है।

2. कार्यक्रम के उद्देश्य

कार्यक्रम का केन्द्रीय उद्देश्य औपचारिक स्कूलों में विज्ञान को गतिविधि आधारित पद्धति से पढ़ाना तथा इसी के अनुरूप शिक्षा की मुख्यधारा में संरचनागत परिवर्तन करवाना था। इसकी मान्यता थी कि बच्चों को अपने हाथों से प्रयोग करके अपने अवलोकनों को दर्ज करके और अपने सहपाठियों एवं शिक्षकों के साथ चर्चा करके स्वतंत्र निष्कर्ष निकालते हुए विज्ञान सीखना चाहिए। ऐसा होने पर ज्ञान सृजन से जुड़ी ज्ञानमीमांसीय धारणाएं परिवर्तित होने लगती है। ज्ञान की सत्ता का दायरा शिक्षक से हटकर विस्तृत होने की दिशा-दशा पकड़ लेती है। विद्यार्थियों को आत्मसम्मान के लिए शिक्षक द्वारा 'शाबाश' कहे जाने पर ही आश्रित नहीं रहना पड़ता, बल्कि इस प्रकार के शैक्षिक माहौल में शारीरिक एवं बौद्धिक गतिमयता में ही आत्मविश्वास का विकास अन्तर्निहित होता है। पद्धति में परिवर्तन जहां अनेक बुनियादी मान्यताओं में परिवर्तन के बिना असंभव होता है, वहीं पद्धति में परिवर्तन अनेक परिवर्तनकारी मान्यताओं के द्वार खोलता है।

3. कार्यक्रम में सहभागी

कार्यक्रम का खाका फ्रेंड्स रूरल सेंटर, रसूलिया एवं किशोर भारती ने तैयार किया था। यह खाका मध्यप्रदेश शासन के समक्ष प्रस्तुत किया गया। शासन ने एन.सी.ई.आर.टी. के क्षेत्रीय परामर्शदाता से भी परामर्श लिया। भौतिकी अध्ययन दल के सदस्य केवल सेवाकालीन प्रशिक्षणों में ही उपलब्ध हो सकते थे। यही बात टाटा आधारभूत शोध संस्थान, मुंबई के वैज्ञानिकों पर भी लागू होती थी। दिल्ली-विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के प्रोफेसर प्रमोद श्रीवास्तव तथा प्रो. विजय वर्मा ने सन् 1972 में अलग-अलग प्रस्ताव विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा दिल्ली विश्वविद्यालय को भेजे। जब दिल्ली विश्वविद्यालय की विद्वत परिषद तथा कार्यकारी परिषद में प्रस्ताव पर चर्चा हो रही थी, उसी बीच विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी और यात्रा व्यय की सहायता के अतिरिक्त विश्वविद्यालय को हर सत्र में होशंगाबाद जाने वाले दो शिक्षकों की जगह दो तदर्थ शिक्षक नियुक्त करने की अनुमति भी दी। इस निर्णय के दबाव में विश्वविद्यालय को भी अनुमति देनी पड़ी। उस समय तक ऐसी सुविधा आयोग की टीचर फेलोशिप स्कीम के तहत केवल उच्च स्तरीय शोधकार्य के लिए दी जाती थी। यह पहली बार था कि आयोग ने इस स्कीम के दायरे में ग्रामीण स्कूलों की गुणवत्ता में सुधार का काम भी शामिल किया।

कार्यक्रम के सुखद अनुभवों से इसके सहभागियों का उत्साह बढ़ा तो इसके क्षेत्रीय विस्तार के साथ-साथ इसी प्रकार के प्रयास अन्य विषयों में भी किये जाने की जरूरत महसूस की जाने लगी। इस प्रकार की जरूरत के मद्देनजर भारत सरकार के विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी विभाग तथा मध्य प्रदेश सरकार दो तिहाई व एक तिहाई के अनुपात में नई संस्था को वित्तीय सहायता प्रदान करने पर सहमत हुए। इस योजना के तहत सन् 1982 में एकलव्य की स्थापना हुई।

संक्षेप में कहा जाये तो भारत सरकार, मध्य-प्रदेश सरकार, टाटा इंस्टीट्यूट (मुंबई), क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, किशोर भारती, फ्रेंडस रूरल सेंटर रसूलिया, दिल्ली विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग होविशिका के साझेदार थे।

4. कार्यक्रम का बौद्धिक विकास

यह तो तय था कि इस कार्यक्रम के तहत जो कुछ किया जाएगा वह शिक्षा की मुख्यधारा को केन्द्र में रखकर किया जायेगा। लेकिन इस सिद्धांत को आगे की दिशा में बढ़ाने के लिए मुख्यधारा तथा कार्यक्रम की समझ में किस प्रकार मुद्दे उठाये जायें ताकि शिक्षातंत्र में उनके अनुरूप संरचनागत परिवर्तन किए जा सके, यह साफ-साफ नहीं था। भौतिक दल द्वारा मुंबई में किए गए कार्यों से कुछ सीख जरूर मिली थी। उन सभी को क्रियान्वित नहीं किया जा सका। लेकिन कार्यक्रम के ढाँचे से मुक्त होकर संवादात्मक कार्य करने की प्रवृति ने कार्यक्रम को लोकतांत्रिक बनाने में मदद की, इस तरह से वर्तमान शिक्षातंत्र में मौजूद बुनियादी खराबियों को समझकर नवीन चुनौतियों को स्वीकार किया गया।

4.1 सामाजिक संरचना तथा शिक्षा में अंतर्संबंध

कार्यक्रम द्वारा आयोजित उन्मुखीकरण कार्यक्रमों में शिक्षकों से चर्चा सीधे विज्ञान पर शुरू न करके वर्तमान शिक्षा प्रणाली के बारे में की गई। लेकिन ऐसी चर्चाओं के दौरान किसी शिक्षा अधिकारी के पहुंचने पर खामोशी छा जाती थी। ऐसे सामंती माहौल में इस बात की उम्मीद नहीं की जा सकती थी कि शिक्षायी हालातों में रचनात्मक परिवर्तन होगा। क्योंकि ऐसे माहौल में अधिकतम भागीदारों के अनुभवों का लाभ उठाने की संभावना न्यूनतम होती है। इस संरचना के कारण नीचे से लेकर ऊपर योजना बनाने वालों तक संप्रेषण एवं फीडबैक नहीं हो पाता है। शिक्षा व्यवस्था में ऐसे हालातों की मौजूदगी राजनैतिक लोकतंत्र एवं सामाजिक लोकतंत्र के अन्तर्संबंधों को समझने में भी मददगार होती है। ऐसे सामंती माहौल में उद्देश्य के अनुरूप उन्मुखीकरण कार्यक्रमों को संचालित

करना चुनौतीपूर्ण कार्य था। इसके बावजूद मात्र एक वर्ष के बाद उन्हीं शिक्षकों ने राज्य के शिक्षामंत्री की उपस्थित को भी सहजता से लिया और उनके आने पर केवल थोड़ी सी हलचल भर हुयी। जब मंत्री महोदय शिक्षकों की मेजों तक जा-जाकर उनके प्रयोगों को देखने की केशिश कर रहे होते तो भी शिक्षक बिना किसी परेशानी के अपने प्रयोग करते रहते।

4.2 'मुझे नहीं मालूम' का दर्शन

उन्मुखीकरण कार्यक्रमों के दौरान किये जा रहे प्रयोगों पर शिक्षक अपने-अपने अनुभवों के अनुसार सवाल उठाने लगे। सवालों के समाधान की प्रक्रिया में नयी अवधारणाएं जुड़ती जातीं। एक कार्यक्रम के दौरान जब इस सवाल की खोज की जा रही थी कि मिट्टी में मौजूद उर्वरक पत्तियों तक कैसे पहुंचते हैं ? तो शिक्षक सवाल पूछकर नए प्रयोगों के लिए माहौल तैयार करते। ऐसा ही एक सवाल किसी शिक्षक ने पूछा कि यदि हम लाल स्याही की जगह नीली का उपयोग करें तो क्या होगा ?इस पर जब वहां मौजूद एकमात्र जीवविज्ञानी ने ''मुझे नहीं मालूम'' कहा तो उनके उत्तर से शिक्षकों के पूरे मूल्य-तंत्र को धक्का लगा। लेकिन धीरे-धीरे यह स्वीकार करना कि ''मुझे नहीं मालूम'' - शिक्षकों के लिए भी सहज होता चला गया और यह दर्शन उनके और कार्यक्रम के मानस का हिस्सा बनता गया ।

4.3 पाठ्यसामग्री के चुनाव के आधार

कार्यक्रम के अनुभवों ने इस सिद्धांत को मजबूती प्रदान की कि विज्ञान जैसे विषय का स्थानीय परिवेश के साथ गहरा संबंध होता है। क्योंकि विज्ञान सीखने की प्रारंभिक अवस्था अवलोकन पर निर्भर करती है, इसलिए उन्हीं सवालों को पाठ्यसामग्री में जगह दी जानी चाहिए जिन्हें परिवेश में अवलोकित किया जा सकना संभव हो। यह समझ विज्ञान की सार्वभौमिक धारणा के विपरीत है, इसलिए कार्यक्रम के संचालन में दो विपरीत तरह की समझ के बीच टकराव होता रहा। होविशिका अपनी समझ के आधार पर मध्य प्रदेश में प्रारंभिक कक्षाओं में 'ज्वार-भाटा' के पढ़ाए जाने को गैर-शिक्षणशास्त्रीय मानते थे क्योंकि वहां समुद्र की अनुपस्थिति में इस प्राकृतिक घटना का अवलोकन संभव नहीं है।

ऐसी अनेक वैज्ञानिक घटनाएं हैं, जिनको वैज्ञानिकों ने दीर्घकालीन परिश्रम और जटिल शोध के द्वारा समझा है। होविशिका की समझ बनी कि ऐसी घटनाओं के आधार पर विकसित अवधारणाओं को तब तक न बताया जाए जब तक कि बच्चों के प्रायोगिक कौशल व तार्किक निष्कर्ष निकालने की क्षमता इतनी विकसित न हो जाए, कि वे अन्य लोगों द्वारा किए गए प्रयोगों को समझ सकें।

4.4 परीक्षा प्रणाली के महत्व की पहचान

उन्मुखीकरण कार्यक्रमों में शिक्षकों की सफलतापूर्वक भागीदारी के बाद भी परीक्षा के नजदीक आते ही शिक्षक पुराने ढर्रे पर लौट आते और अपेक्षित सवालों के पूर्व-निर्धारित उत्तर बच्चों के गले उतार देते। इस व्यवहार का विश्लेषण करने पर यह बात उजागर हुई कि वर्तमान में शिक्षण-पद्धति तथा परीक्षा में नियामक तथा मातहत का संबंध है। परीक्षाएं, शिक्षण-पद्धति को नियंत्रित करती हैं। जबकि होना यह चाहिए कि परीक्षाओं का संचालन पद्धति के अनुरूप हो। परीक्षा-प्रणाली में परिवर्तन के बिना कोई भी प्रयास सफल नहीं हो सकता। इसलिए परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन को मुद्दा बनाया गया और अपनी परीक्षा-प्रणाली विकसित करने की मांग रखी गयी। काफी परेशानी के बाद शासन ने दूरदृष्टि दिखाते हुए कार्यक्रम को सोलह स्कूलों में विज्ञान विषय में स्वतंत्र परीक्षा निकाय के रूप में मान्यता दे दी। 1975 में रसूलिया और किशोर भारती द्वारा ली गई परिक्षाओं के परिणामों को सरकारी संभागीय परीक्षा बोर्ड की अंक तालिका में शामिल कर लिया गया। यानि, इन संस्थानों को प्रदेश सरकार ने परीक्षा बोर्ड के तुल्य मान लिया था। एकलव्य के गठन के बाद यही मान्यता उसे हस्तांतरित कर दी गई। बाद में एकलव्य ने उत्तर-प्राथमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन के लिए भी ऐसा ही प्रावधान करवाया। इन ढांचागत परिवर्तनों को करवाने के प्रयास में परीक्षा प्रणाली के औपनिवेशिक चरित्र को व्यावहारिक रूप से समझ पाना अधिक संभव हो पाया।

राज्य ने कार्यक्रम बंद करवाने संबंधी अपने आदेश में मुख्यत: तीन तर्क दिए– नवाचारों को मापने का पैमाना बोर्ड परीक्षाएं होती हैं।
– कार्यक्रम और सरकार का रिश्ता किरायेदार और मकान मालिक का है।
– कानून के तहत जिला योजना समितियों के बन जाने से समाज को स्कूल की संरचना और उसकी पाठ्यचर्या बदलने का हक मिल गया है। राज्य सरकार ने एक तर्क यह भी दिया है कि नवाचारों को मापने का पैमाना बोर्ड़ की परीक्षाएं ही हो सकती हैं। पहली बात तो यह है कि यदि कोई नवाचार अपवादों के लिए कार्य न करके मुख्यधारा में परिवर्तन हेतु प्रतिबद्ध है, तो उसकी प्रतिबद्धता के दायरे में मूल्यांकन प्रणाली अनिवार्य रूप से शामिल होती

5. सबक

होविशिका के उद्गम, यात्रा तथा समाप्ति पर विचार करने से कई महत्वपूर्ण पहलू उभरकर आते हैं, जिनका नीतिगत महत्व रेखांकित किया जाना जरूरी है। होविशिका से पहले दो स्वयंसेवी संस्थाओं में शिक्षायी प्रयोग चल रहे थे। इन संस्थाओं के अपने उद्देश्य तथा चिन्ताएं थीं। यही चिन्ताएं होविशिका के रूप में भी प्रतिबिंबित हुईं। होविशिका शिक्षा की मुख्यधारा में कुछ बेहतर शैक्षिक माहौल तैयार करने में मदद करने वाले एवं समतामूलक संरचनागत परिवर्तन करवाने में इसलिए भी सफल हो सका, क्योंकि इसके उद्देश्य न तो आयातित थे और न ही इनका नियंत्रण सुदूर विदेश की किसी वित्त पोषक एजेंसी के हाथ में था। इसने स्थानीय जरूरतों को मुख्यधारा के साथ जोड़ने का कार्य किया।

होविशिका से दूसरा सबक यह लिया जा सकता है कि शैक्षिक कार्यक्रमों को चलाने के लिए शिक्षातंत्र से जुड़े विभिन्न पहलुओं की बारीक समझ विकसित करने हेतु व्यापक संवाद गोष्ठियां चलाई जानी चाहिए ताकि शिक्षातंत्र की व्यापकता में शैक्षिक कार्यक्रमों की अवस्थिति का सही-सही मूल्यांकन किया जा सके। ऐसे मूल्यांकन के जरिए कार्यक्रम की सफलता-असफलता का अंदाज लगाने में मदद मिल सकती है।

होविशिका से तीसरा सबक यह लिया जा सकता है कि सामाजिक संरचना की रूढ़ि को तोड़े बिना परिवर्तन की संभावना न्यून हो जाती है। उदाहरण के लिए समाज में व्याप्त पदानुक्रम की संरचना संवाद की प्रक्रिया में बाधक होती है। संवाद के बिना शैक्षिक समझदारी तथा ईमानदारी का वातावरण निर्मित करना बहुत कठिन है।

होविशिका से चौथा सबक यह लिया जा सकता है कि शैक्षिक सुधार कार्यक्रमों को व्यापक रूप से लागू किए बिना, इनकी सफलता को शंकित नजरों से देखा जाता रहेगा। मूल्यांकन प्रणाली में हस्तक्षेप के बिना शिक्षण-पद्धति या पाठ्यसामग्री निर्माण के अवसर हासिल कर लेना भी अपना महत्व खो देते हैं। ऐसा होने पर पूरे प्रयास पर ही सवाल खड़े किये जाने लगते हैं तथा इसका उपयोग भविष्य में किये जा सकने वाले हस्तक्षेपों को निरुत्साहित करने हेतु किया जा सकता है।

पांचवे सबक के तौर पर कहा जा सकता है कि हस्तक्षेपों के नीतिगत निहितार्थ समझे बिना इनके दिशाहीन हो जाने की पूरी संभावना रहती है।

होविशिका से छठा सबक यह लिया जा सकता है कि स्थानीय लोगों के सहयोग के बिना किसी भी कार्यक्रम की सफलता संदिग्ध रहती है। जब तक विभिन्न सामाजिक सवालों से जूझ रहे संगठनों का सहयोग शैक्षिक हस्तक्षेपों के लिए उपलब्ध नहीं होता, तब तक इस प्रकार के कार्यक्रम कुछ राजनेताओं, नौकरशाहों तथा बुद्धिजीवियों की कृपा प्राप्त होने मात्र तक जिंदा रह सकते हैं।

6. राज्य द्वारा प्रस्तुत तर्कों का खण्डन

होविशिका बंद करवाने के पक्ष में राज्य सरकार ने एक तर्क यह दिया है कि नवाचारों को मापने का पैमाना बोर्ड की परीक्षाएं ही हो सकती हैं। पहली बात तो यह है कि यदि कोई नवाचार अपवादों के लिए कार्य न करके मुख्यधारा में परिवर्तन हेतु प्रतिबद्ध है, तो उसकी प्रतिबद्धता के दायरे में मूल्यांकन प्रणाली अनिवार्य रूप से शामिल होती है। ठीक इसी तर्क पर चलते हुए काफी विचार-विमर्श के बाद राज्य ने होविशिका को अपने तरीके से परीक्षा लेने देने की समझ को स्वीकार करते हुए उनके द्वारा ली गई परीक्षा को बोर्ड के तुल्य माना था। एक शैक्षिक कार्यक्रम किन्हीं ज्ञानमीमांसीय मान्यताओं पर टिका होता है। उस कार्यक्रम की प्रत्येक कड़ी को उन्हीं मान्यताओं के अनुसार संचालित न करने से नवाचार अपनी ऊर्जा खो देता है, जैसा कि भौतिक अध्ययन दल के साथ मुंबई नगर निगम के स्कूलों में हुआ। यह संगत नहीं है कि व्याख्यान-पद्धति पर आधारित शिक्षण का मूल्यांकन प्रोजेक्ट पद्धति पर आधारित शिक्षण के अनुकूल हो। प्रत्येक शिक्षण पद्धति विद्यार्थियों में किसी खास गुण-समूह के विकास को केन्द्र में रखती है, इसलिए एक प्रकार की मूल्यांकन-प्रणाली हर प्रकार की शिक्षण-पद्धति पर आधारित कार्यक्रमों के लिए प्रासंगिक नहीं हो सकती।

राज्य द्वारा प्रस्तुत दूसरे तर्क की प्रकृति केवल अलोकतांत्रिक ही नहीं है वह लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था के विरोध में भी खड़ी है। राज्य तथा राज्य के अन्तर्गत चलने वाली गतिविधियों को क्रमशः मकान मालिक तथा किराएदार की संज्ञा देना सामंती सोच का परिचायक है। एक कार्यक्रम जो लोकतांत्रिक व्यवस्था के ढांचे के अन्तर्गत चल रहा हो, जिसकी प्रत्येक गतिविधि में राज्य की सहमति हो। ऐसे कार्यक्रम को गैर-लोकतांत्रिक तर्क देकर बंद करवा देना विमर्शों के प्रति राज्य के नकारात्मक रवैए को रेखांकित करता है।

राज्य द्वारा प्रस्तुत तीसरा तर्क उसी के द्वारा बोर्ड-परीक्षा के संदर्भ में दिए गए तर्क के खिलाफ है। राज्य द्वारा प्रस्तुत तर्कों में स्पष्ट आन्तरिक विरोधाभास है। यदि तीसरे तर्क को सही मान लिया जाए तो इसका अर्थ है कि जिला योजना समितियां अपने अनुसार पाठ्यक्रम की रचना कर सकती हैं। यानि जितनी समितियां, उतने प्रकार के पाठ्यक्रमों के लिए परीक्षा एक सी होगी तो पाठ्यक्रमों

की भिन्नता का क्या औचित्य रह जाता है? इससे साफ है कि राज्य द्वारा प्रस्तुत तर्क बेहूदा हैं।

होविशिका और पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम की दृष्टि से विचार करने पर होविशिका ने सुखद संभावनाओं के जीवित होने का अहसास कराया। हालांकि कार्यक्रम ने अपनी पाठ्यक्रम संबंधी सोच को अलग से लिपिबद्ध नहीं किया है, फिर भी इसको रेखांकित किया जा सकता है। होविशिका की इस बात के लिए आलोचना होती रही है कि उसने विज्ञान के सार्वभौमिक स्वरूप को विकृत करके स्थानीय बनाने का प्रयास किया। इस आलोचना को समझने के लिए अनुशासन तथा शिक्षणशास्त्र के बीच पनपे दो प्रकार के संबंधों को समझना आवश्यक है। एक समझ के अनुसार किसी अनुशासन में उपलब्ध ज्ञान को पाठ्यक्रम का हिस्सा बना देना ही पर्याप्त है। दूसरे प्रकार की समझ के अनुसार अनुशासन में उपलब्ध ज्ञान के साथ-साथ उस अनुशासन में ज्ञान प्राप्त करने के तरीके भी महत्वपूर्ण हैं। होविशिका दूसरे प्रकार की समझ पर आधारित था। उसके लिए वैज्ञानिक ज्ञान ही नहीं वैज्ञानिक तरीका भी महत्वपूर्ण था। उसने अपने पाठ्यक्रम का ताना-बाना वैज्ञानिक तरीके को केन्द्र में रखकर बुना। वैज्ञानिक तरीकों की मोटे तौर पर दो श्रेणियां बनाई जा सकती हैं- अवलोकन आधारित पद्धति तथा सैद्धांतिक पद्धति। मिडिल कक्षाओं के विद्यार्थी उम्र की उस अवस्था में होते हैं, जिसमें सैद्धांतिक-पद्धति उनकी बौद्धिक क्षमताओं से बहुत अधिक मेल नहीं खाती, इसलिए अवलोकन आधारित पद्धति को कार्यक्रम ने अपनाया।

अवलोकन को आधार बनाने से विद्यार्थियों के अनुभव महत्वपूर्ण हो जाते हैं। इस क्रम में अवलोकित न की जा सकने वाली घटनाएं पाठ्यक्रम से बाहर हो जाती हैं। यानि विषय-वस्तु का स्थानीय होना अनिवार्य हो जाता है। इसी तर्क पर चलते हुए होविशिका ने मध्यप्रदेश में ज्वार-भाटा की घटना को पढ़ाए जाने को गैर-शिक्षणशास्त्रीय माना, क्योंकि इस प्रदेश में ज्वार-भाटा के अवलोकन की संभावना शून्य है। ऐसी कोई भी विषय-वस्तु जिसका परिवेशगत अवलोकन संभव न हो उसे प्रारंभिक कक्षाओं में विज्ञान सीखने का माध्यम नहीं बनाया जाना चाहिए। प्रारंभिक स्तर पर किए गए अवलोकन तथा प्रयोग उच्च स्तरीय प्रयोगों को समझने का पद्धतिमूलक आधार तैयार करते हैं। प्रारंभिक स्तर पर अवलोकन तथा अनुभवों को विज्ञान-शिक्षण का आधार बनाने से होविशिका ने वैज्ञानिक-पद्धति को व्यापक प्रसार देने का प्रयास किया। इसलिए होविशिका की आलोचना करने वाले ये भूल जाते हैं कि इस कार्यक्रम ने विज्ञान का नहीं, बल्कि विज्ञान सीखने की विषय-वस्तु के स्थानीय होने का पक्ष रखा। ऐसा किया जाना विद्यार्थी तथा अनुशासन दोनों के हित में है।

होविशिका ने यह दिखाया कि 'कैसे पढ़ाया जाए' से ही यह तय होता है कि 'क्या पढ़ाया जाए'। होविशिका ने यह भी स्थापित किया कि मूल्यांकन प्रणाली पाठ्यक्रम का अभिन्न हिस्सा होती है, लेकिन वह शिक्षण पद्धति के अधीन होनी चाहिए न कि इसका उलटा। यह विमर्श तो आसानी से उपलब्ध हो जाता है कि मूल्यांकन-प्रणाली पाठ्यक्रम का हिस्सा है लेकिन मूल्यांकन प्रणाली को पाठ्यक्रम में गुणात्मक शिक्षा के दृष्टिकोण से उपयुक्त क्रम में अवस्थित करने का ठोस काम होविशिका ने किया। ◆

संदर्भ सूची

1. सद्गोपाल अनिल, *शिक्षा में बदलाव का सवाल;* पृ. 25-92, ग्रंथशिल्पी, नई दिल्ली ।
2. सद्गोपाल अनिल, *पोलिटिकल इकोनोमी ऑफ एजूकेशन इन दि एज ऑफ ग्लोबेलाइजेशन;* पृ- 1-5, भारत जन विज्ञान जत्था, नई दिल्ली, 2003.
3. सद्गोपाल अनिल, कमल महेन्द्रू, साधना सक्सेना एवं रेक्स डी रोजोरिया (दिसंबर 1997) *दि होशंगाबाद विज्ञान;* साइंस टुडे में ।
4. *होशंगाबाद विज्ञान,* एकलव्य, भोपाल 2002
5. ल्यूटन डेनिस, द स्टडी ऑफ करिक्यूलम : *डेफीनीशन एंड आइडोलॉजीज; करीक्यूलम स्टडीज एंड एजूकेशलन प्लानिंग* में पृ- 1-13.
6. डिवी जॉन, माई पेडॉगॉजिक क्रीड; *दि करिक्यूलम स्टडीज रीडर* में पृ- 17-23 रूटलेज, न्यूयार्क 1997
7. डिवी जॉन, *एक्सपीरिएन्स एंड एजूकेशन;* दि मेकमिलन कंपनी, न्यूयार्क 1984
8. बेरो रोबिन, *ए क्रीटिकल इन्ट्रोडक्शन टू करिक्यूलर थ्योरी;* पृ- 3-14 द एल्थहाऊस प्रेस, कनाडा 1984
9. स्टेनहाऊस नॉरेन्स, *एन इन्ट्रोडक्शन टू करीक्यूलम रीसर्च एंड डवल्पमेंट;* पृ- 1-5, हिनमेन, लंदन, 1975
10. बाला ऋतु, *भारतीय परीक्षा प्रणाली का समाजशास्त्र,* शिक्षा विमर्श (फरवरी-मार्च, 2003) दिगन्तर, जयपुर।
11. प्रपन्न राघवेन्द्र, *विज्ञान के विरूद्ध शिक्षा,* जनसत्ता (दैनिक) 1अक्टूबर, 2002.
12. प्रपन्न राघवेन्द्र, *बाल विज्ञान नहीं शुद्ध विज्ञान,* हिन्दुस्तान (दैनिक) 11 दिसम्बर, 2002.